प्रस्तावना.

सरस शांत रसके समुद्र, अत्यंत पवित्र गुणरत्नोंके निधान, और भविक कमलकों प्रबोधनेके वास्ते सूर्य समान अनंत गुणी श्री जिनेश्वरजीकों प्रणाम करके अनंत गुण गंभीर श्रीगौतम गणधरजीका चित्तमें ध्यान धर, और वाग्देवी–साक्षात् ज्ञानमूर्ति सरस्वतिजीकों एकाग्र मनसें स्मरण चिंतवन करता हुं; क्योंकि यथाविधि प्रमाद परिहर कर श्रीमन् महावीर स्वामीजीके साधु–साध्वी, श्रावक, श्राविकाओं रुप सर्व प्रजा सदा सुखी होवे उसवास्ते; और दुषम काल आदि विषम संयोगोंकों पाकर चाहिये वैसा सम्यग् ज्ञान विवेकके विरहसें सर्वज्ञ प्रणीत उत्तम नीति रीतिकी गंभीर न्यूनतासें करके आज कल चारों और फैला हुआ अज्ञान रुप अंधकारकों भस्मीभूत करनेके वास्ते; काले मुंहवाले कुसंपादि दुर्गुण चोरोंका आगमन बंध करनेके वास्ते, सम्यग् ज्ञानोद्योत प्रकटानेके वास्ते, सर्व सुखकर सुसंपादि सुगुण रत्न निधान साधनेके वास्ते; समस्त साधर्मीजन एक दूसरेकों योग्य मदद देकर, जगहितकर श्री जिनराजके शासनकी यथा शक्ति उन्नति–प्रभावना कर सकें; पापी प्रमादके परतंत्र रहनेसें भइ हुइ या होती हुइ मलीनता दूर करसकें; सब संक्लेश दूरकर श्रीवीतराग प्रभुका रागद्वेष मोहरुप दुष्ट दोषोंकों पीस डालनेका सदुपदेश सार्थक कर सकें, यावत् निर्मल अंतःकरणसें सुसंप जंजीर बद्ध होकर एकाग्रतासें स्वपर हितकर मार्गकोंही अवलंबकर रह सकें, वैसी ही हितशिक्षा योग्य जीवोंकों देनेके वास्ते, हर हमेशां प्रयत्नपरायण रह सकें, और

स्वपर हितकारी मार्गकाही सेवन करनेहारे सज्जनोंकी सत्कृतिका सदा अनुमोदन कर सकें, यानि उसको लेशमात्र निंदे नहीं, इर्ष्या या अहंकार नगरी भी करे नहीं, किंतु सुकृत्यकी ही वृद्धि हो सकें ऐसी अंतःकरणमें दरकार रखकर—वचनद्वारा वैसा ही बोलकर और शरीरसें भी इसी प्रकार प्रवर्त्त सकें वैसी भव्यजनोंको सर्व यथाशक्ति प्रेरणा करनेके वास्ते, और सहज ही वैसी शुभ प्रवृत्ति करनेहारे प्यारे भाइ और भगिनियोंको स्वपर हितकारी मार्गमें निःस्वार्थतासें स्वार्थ भोग देकर निर्भयता और निश्चलतासें विशेष प्रकारसें उनको शुद्ध प्रवृत्ति करानेके वास्ते, अपने आसन्नोपकारी चरम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामीजीका उत्तमोत्तम चरित्र श्रवण करना—इत्यादिसें विचार लेना सो बहुत उपयोगी है, ऐसा निश्चय करके प्रसंगोपात्त संक्षेपसें प्रभुका सद्वर्त्तन वर्णन कर, निर्वाण कल्याणक पर्व अपने आपको प्रभुकी प्रजा—पुत्र पुत्री समानको क्या क्या कर्तव्य है, उनका संक्षेपमें बयान देकर सहज आत्म हितार्थे इस ग्रंथका उपक्रम—आरंभ किया है. उनमेंसें राजहंसकी तरह गुण मात्रकोंही ग्रहण करके सन्मार्गका सेवन कर सज्जन सदा सुखी होवें यही आंतरिक इच्छा है. सो सफल हो! और उत्तरोत्तर श्री जिनशासनकी शोभा दिनप्रतिदिन वृद्धिगत हो! तथा शुद्धाशयसें जिनाज्ञाको आराधकर समस्त जैनवर्ग जय लक्ष्मीके स्वामी हो!! इत्यादि आशीर्वाद पूर्वक प्रस्तुत ग्रंथकी प्रस्तावना पूरी कर अब प्रस्तुत विषय संबंधमें दो शब्द कहता हूं—

[illegible]

ही मुनासिब है. परमार्थ बुद्धिसें भव्यजीवोंको स्वहित साध्य कर-लेनेके लिये युक्तिके साथ प्रेरणा करनी उनके जैसा एक भी परोपकार नहीं है. वैसा परोपकार वस्तुतः स्वार्थ रूप ही होनेसें हरएक सार्थक-सच्चे जैनोंने अन्यजनोंको शुद्ध जैन तत्त्व समझानेके वास्ते बन सके उतना प्रयत्न करना जरूरतका है. इस प्रकारका यत्न स्व-पर हितकी वृद्धि सहित पवित्र जैन शासनकी उन्नति सिद्ध करनेके लिये प्रबल कारणभूत माना जाता है. चरम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामीने परिपूर्ण ज्ञानद्वारा पूर्व तीर्थंकरोंकी तरह वस्तु तत्त्व यथार्थ जानकर, प्ररूपकर अनेक भव्य जनोंके अज्ञान अंधकारका साक्षात् छेद नाश किया है, इतनाही नहीं मगर महा मंगलमय ज्ञान प्रकाश पवित्र द्वादशांगी द्वारा वसुधातलपर भव्यजनोंके कल्याण निमित्त फैलाकर आखिर अविनाशि अचल सिद्धि स्थानमें निवास किया. जैसें अंधे मनुष्यको करोडों दीपक भी उपकार नहीं कर सकता है, तैसे कदा-ग्रहसें ग्रसित हुवे मिथ्यादृष्टि अंध जनोंको उक्त पवित्र ज्ञान प्रकाश उपकार नहीं कर सकता है; परंतु सरल बुद्धि आत्मरुचि सज्जनोंको तो महान् उपकार कर सकता है. अैसा समझकर पहिले सामान्य रीतिसें श्रीमहावीरजीके निर्वाणका बयान कथनकर पीछे अपने कर्तव्य तर्फ भव्य सत्वोंका लक्ष्य खींचा गया है. बाद विविध प्रकरणोंका सार ग्रहण कर 'सार बोल संग्रह' और धर्मकल्पवृक्ष यथा-मति तैयार किया गया है. उसके बाद नाम मुवाफिक गुणधारक 'उपदेश रत्नकोश' प्रकरणका बहुत करके बाल जीवोंको भी समझ लेना सुलभ हो पडे वैसी सरल भाषामें सद् उपदेश सार नामक विवरण सामान्य रीतिसें करनेमें आया है. ये विषय जैन बालकोंको नीतियुक्त सामान्य धर्म बोध देनेमें खास उपयोगी हो

पडे वैसा है. अपने खास कर्त्तव्यमें अपनकों शिथिल करनेहारे या भूल खिलाकर उलटे मार्गपर चढानेहारे पांच कट्टे दुश्मन जैसे पांच प्रमादका परिहार करनेके वास्ते 'प्रमाद पंचक परिहारमें' जगह जगह महात्माओंके वाक्योंसें समर्थन करके बने वहां तक समझ देनेमें आइ है. पद शांत रस युक्त साथ प्रसंगोपात बंध बैठते होनेसें रसज्ञकों उक्त विषय अच्छी असर कर सके वैसा है. जैनोंकी पूर्वस्थितिके साथ मुकाबला करनेसें अपनी इस वख्तकी स्थिति बहुतही दयाप्रद मालुम होती है. कुसंप, सत्यज्ञानकी गंभीर न्यूनता, ज्ञानका घटित उपयोग करनेकी न्यूनता, लक्ष्मीकों तावे करनेके वास्ते साधनभूत प्रमाणिकतादिकका होता हुवा अनादर, और नीति–रीति धर्मशिक्षणमें गंभीर न्युनता वगेरः इनके नजर आते हुवे सबब हैं, उन बाबतमें सामान्य रीतिसें जैन वर्गको यथामति अति अगत्यकी सुचनाओ करनेमें आइ है यानि इत्तला दीगइ है. उमीद है कि–यदि बुद्धिवलसें मनन पूर्वक उनद्वारा योग्य कदम भरनेमें आयेंगे, तो अपन तुरंत कुछ अच्छे सुधारेकों दाखिल कर सकेंगे. आखिरमें उज्वल गोहरके लरकी समान अमूल्य और वहुत उपयोगी 'सार शिक्षा संग्रह' दाखल करनेमें आया है, और उसीके अंत विभागमें आत्माके अलग अलग प्रकार, उच्च स्थिति पानेका अनुकूल मार्ग और परमात्मपद वगेरः बाबतोंका समावेश करनेमें आया है; तदपि मति मंदतादिकसें कुछभी उत्सुत्र लीखा गया होवे उसकी माफी मंगकर सुधार लेनेकी सुहृदयोंकों नम्र प्रार्थना है.

इत्यलं श्री शांतिः

मुनि गुणमकरंदाभिलाषी-

कर्पूरविजय.

भूमिका.

प्रिय धर्म बंन्धु और भगिनियें ! श्री वीतराग परमात्माके अनूपम प्रभाव कृपा और हित बुद्धिसें कथन किये हुवे धर्म रहस्य के महात्म्यसें इहलोक परलोककी स्वार्थ परार्थ कार्य सिद्धिके अनन्य साधारण साधन होने परभी सांमत समयमें तत् तत् साधनोंके सदुपयोगके अभावसें करकें भव्य प्राणीयोंके कर्णपुटमें ज्ञानामृत सिंचनेहारेकी न्युनता होनेसें, दिन प्रतिदिन ज्ञान, धर्म और नयादिकका नाश होता हुआ नजर आता है, यह वीरपुत्रोंको और उसमें भी ज्यादे करकें वीर शिष्योंको अल्प शोच नहीं है. पूर्वकालमें मुनिवर्य, लिखित ग्रंथादिक चाहिये उतने साधन रहित होने परभी विद्याभ्यास करने करानेके उपरांत धर्म रहस्यके तत्त्व रूपांतरमें रचनेके साथ नियमित विहार करकें अनेक मिथ्यात्वियोंको भी उपदेश द्वारा सद्धर्म प्रापक होकर वीरांतेवासित्वका साफल्य कर शास्त्रोन्नतिमें एकांत जय मिलातेथे जब आगे ऐसाथा तब आधुनिक वख्तमें पूर्वोक्त मुनिवर्योंके उपदेशकों समयानुसार अनुकरण करनेहारे वीर शिष्योंके दर्शन करनेमें भी साधर्मीजन हो भाग्यवान् नहीं होते है, तो सुक्ति सुधारसकी पिपासा या अन्य प्रतिबोधकी आशा–उमेद कहांसें रहने ही पावे ?

तदपि अभी कितनेक मुनिराज दुर्गम अज्ञानी देशमें विचर करकें स्वकर्त्तव्य बजाकर धर्माभिमानीओंकों पुनः ज्ञानामृतमें रसिक बनानेके लिये उत्सुक हो रहे हैं, या हुवे हैं, उसके साथ हरएक धर्माभिलाषीकों ज्ञाता मुनिराजोंकी सूक्तिका संगीन लाभ

देनेके वास्ते मातृभाषामें शास्त्र तत्त्वोंके नवीन सरल लेख या भाषांतरोंकी भी आवश्यकता वहुत उपयोगी समजते हैं वैसा मालुम होता है; जिससें कितनेक साधारन चरित्रादिके भाषांतर या नवीन लेख दृष्टिगोचर होने लगे हैं, उसी तरह परमकृपालु परमपूज्य मुनिवर्य कर्पूरविजयजी महाराजने भी पूर्वोक्त शुभ आशयसें श्रम लेकर अपनी अमृत दृष्टिका 'जैन हितवोध' रुपी जो प्रथम कटाक्ष फेलाया है, सो भव्यजीवोंको अधिकाधिक वोधदायी है. जिनका लाभ लेकर भव्यजीव अज्ञान विषका नाश करनेके वास्ते अधिकारी वनेंगे ऐसी पूर्ण प्रतीति है.

यह जैन हितवोध ग्रंथमें कितना गांभिर्य, और तत्त्व रहस्य है? उसका वर्णन हम प्रसिद्धकर्त्ता ग्रंथ गौरव भयसें विराम पाकर हमारे सुज्ञ साधर्मी पुरुषोंको जाननेके वास्ते भलामन करेंगे 'ज्यौं ज्यौं इस ग्रंथका पुनः पुनः मनन होवेगा, त्यौं त्यौं उनमेंसें अपूर्वापूर्व आस्वाद आये विगर रहेगा ही नहीं' ऐसा हमारा अनुभव अतिशयोक्तिमें नहीं गिना जायगा.

इस ग्रंथमें धार्मीक विषयोके उपरांत अपने जैन वंधुओकी नीति रीति सुधर सकै ऐसा विषयोंका प्रथन कीया गया है. और जैन पाठशालामें पढनेवाले लडकें लडकीयेंको नैतिक वोध देने लायक यह ग्रंथ वहुत उत्तम हैं. और एसी निष्पक्षपात वृत्तिसें लीखा गया है की अन्य मतावलंवीयोंभी वहुत आदर, हर्षसें इस ग्रंथका लाभ लेते है. और श्रीमंत सरकार गायकवाड महाराजाके केलवणी खातेकी स्कुलोमें इस ग्रंथ इनाम और लायब्रेरी खातेमें मंजुर कीया गया है, यह वावत ग्रंथकी उपयोगीताको प्रकट करती है.

प्रस्तुत ग्रंथकी पहिली आवृत्ति परम पूज्य स्थल पालितानामें जैन धर्म विद्या प्रसारक वर्गकी तरफसें छपवानेमें आइथी लेकीन एसे ग्रंथ रत्नोंकी विशेष उपयोगीता मालूम होनेसें पुर्वोक्त मुनिराजजीकों नम्र विज्ञप्ति करनेके साथ वे कृपालु मुनिश्रीने दूसरी आवृत्ति छपवानेकी आज्ञा दी. जिस्सें दुसरी एडीसन हमारी तर्फसें प्रसिद्ध की गइ जीसमें जैन धर्म प्रकाश और आत्मानंद प्रकाश मासिकोंमेसे उक्त मुनिश्रीका पृथक पृथक लेख भी उन्हीकी आज्ञा लेकर इस्में दाखिल किये गये. फीरभी उस ग्रंथकी ज्यादे जरुरत होनेसें तीसरी एडीसनभी प्रसिद्ध करनेमें आइ उस आवृत्तिमें विषयानुक्रम के फारफेर करनेका योग्य लगनेसें योग्य क्रम रखा गया है. और असल फकीरी नामक विषयमें आत्मानंद प्रकाशका उक्त विषय संधान कर दीया. इस तरह गुर्जर गिराकी तीन आवृति होनेपरभीं हिंदी भाषा जाननेवालोंकी उम्मेद पूर्ण न हुइ. वास्ते कवि पूर्णचंद्र शर्मा द्वारा उसीका हिंदी तरजुमा करवाके हमने प्रसिद्ध कीया है. सो इस ग्रंथका लाभ लेकर लेखकका और हमारा परिश्रमकों भव्य सत्वों सफल करें और स्वकर्तव्यपरायण होवे ऐसी आंतर इच्छा रखते है ! पूज्य मुनिश्रीका प्रयासके वास्ते इन महात्माका शुद्धांतःकरणसें हम अत्यंत आभार मानते हैं.

इस ग्रंथकों मुद्रित करवानेके लिये द्रव्यकी सहाय देनेहारे धर्मानुरागी सद्गृहस्थोंका आभार माननेके साथ ऐसे सन्मार्गमें सद्द्रव्यका व्यय अनेकशः हो ऐसा ही हरदम चाहते हैं ! अस्तुः

"शुद्धि पत्रिका."

पृष्टः	लींटी	अशुद्ध	शुद्ध
६	२१	लज्जा स्पद	लज्जास्पद
७	१८	शोक करनेकी	शोक करने लायक यह बातहैंकी धर्म कार्य उन्कों तप्तत्रपू जैसा लगता है और मानपान करनेकी
१०	८	और	
,,	,,	पूत्र	पूत्र और आनन्द कामदेवतुल्य सुश्रावक समुदाय छोटे पुत्र
१०	२०	भव्यजन	भव्यजनही
१८	२१	चनेके	चलके
१९	३	परम	परमकृपालु
२१	४	मिलाता	मिलता
२४	१०	हुवेले	हुवेले भव्य
२९	३	शासनको	शासनकी
३२	१०	स्वछंता	स्वछंदता
५३	१९	मनुष्य	मनुष्यने
५४	२	नहि. देना	नाहि देना.
५४	८	सुझजन	सुज्ञजन

६८	१७	दुःखदादि	दुःखकादि
८०	२०	बेवकूफी	बेवकूफीकी
८२	२	मेरे	मेरीादि
८६	१५	मन्न	मन्नं
८६	१६	संसार	संसारे
९९	८	राजकथा	राजकथा, देश कथा,
१०३	८	दूकर	कूकर
१०५	२	मुकये	मुंडये
१०८	१३	तरक्री	तरकी
१०८	१६	विराध	विराधन
१०९	७	वापण	भापण
११०	१८	संसार	संहार
१२२	७	उठते	उठाते
१२६	२	और	और कितनेक
१३९	१०	भिन	भि न
१४२	१०	साधानों	साधनो
१४६	९	ही	हीउद्यम करना
१५२	१५	करनी चाहिये	करनी
१६०	१४	क्षणभर	क्षणभरमें
१६१	१३	सघावार	संघोवरि
१६१	१०	छूकाकर	स्तूपाकर
१६८	२१	आर	और

[illegible]

अथ मंगलाचरणम्.

(श्री वीर सद्भाव स्तुति)

वीर जीनेश्वर साहिब गुणज्यो, अरज करुं छुं जग धणीरे. ए टेक.
दया वारियी[१] स्नान करीने, संतोष चिवर[२] धारियेरे;
विवेक तिलक अति चंग[३] करीने, भावना पावन[४] आशयेरे. वीर. १
भक्ति केसर कीच[५] करीने, श्रद्धा चंदन भेळीएरे;
सुगंधी[६] सद् द्रव्य मेळीने, नव ब्रह्मांग[७] जिन अर्चीएरे. वीर. २
क्षमा सुगंधि सुमन सदामे,[८] दुविध धर्म क्षौम[९] युगवरेरे;
ध्यान अभिनव[१०] भुषण सारे, अर्चो अमे घणुं हर्षियेरे. वीर. ३
आठे मदना त्याग करण रुप, अष्ट मंगळआगें थापीएरे;
ज्ञान हुताशन[११] जनित शुभाशय, कृष्णागुरु[१२] उखेवीएरे. वीर. ४
शुद्ध अध्यात्म ज्ञान वह्निथी, [१३] मार्ग धर्म [१४] लवण उतारीएरे;
योग सुवर्त्युल्लास करंता, नीराजना[१५] विधि पूरीएरे. वीर. ५
आतम अनुभव ज्ञान स्वरुपी, मंगल दीप प्रजालीएरे;
योग त्रिक शुभ नृत्य करंता, सहज रत्नत्रयी[१६] पामीएरे. वीर. ६

---

१ जल, २ वस्त्र ३ मनोहर, ४ पवित्र ५ रस, घोळ ६ उत्तम ७ ब्रह्मचर्य रुप ८ पुष्पमाळा. ९ वस्त्र युगल १० अपूर्व ११ अग्नि १२ उत्तम धूप १३ अग्नि १३ पूर्वके अशुद्ध धर्म १५ आरती. १५ मन वचन और कायानी सतप्रवृत्ति १६ सम्यग दर्शन ज्ञान और चारित्र

सत्ययापि[1] सुघोषा[2] वजावी, रोमरोम उल्लासीएरे,
भाव पूजा लयलीन होवंता, अचल महोदय पामीएरे. वीर. ७
भाव पूजा अभेद उपासक[3], साधु निर्ग्रंथे अंगीकरीरे,
द्रव्य पूजा भेद उपासक गृह–मेधीने[4] नित्य वरीरे. वीर. ८
द्रव्य शुद्धि भाव शुद्धि कारण, जिन आज्ञा[5] अविधारीएरे,
ध्याता ध्येय ध्यानरुप एके, अजर अमर पद पामीएरे. वीर० ९
सालंबन निरालंबन भेदे, ध्यान हुताश जलावीएरे,
कंचनोपलने[6] न्याये, करीने, चैतन्यता[7] अजवालीएरे. वीर. १०
कर्म कठीन घन नाश करीने, पुर्णानंदता पामीएरे,
रमतां नित्य अनंत चतुष्के[8] विजय लीला नित्य जामीएरे. वीर. ११

१ सरस शांति सुधारस सागरं,
शुचितरं गुणरत्न महागरं;
भविक पंकज बोध दिवाकरं,
प्रतिदिनं प्रणमामि जिनेश्वरं.

२ अद्याऽभवत् सफलता नयन द्वयस्य,
देवत्वदीय चरणांबुज वीक्षणेन;
अद्य त्रिलोक तिलक प्रतिभासते मे,
संसार वारिधिरियं चुलुक प्रमाणः

३ प्रशम रस निमग्नं दृष्टि युग्मं प्रसन्नं,
वदन कमल मंकः कामिनी संग शून्यः;
कर युगमपि यत्ते शस्त्र संबंध वंध्यं,
तदसि जगति देवो वीतराग स्त्वमेव.

---

१ उत्तम परिणाम. २ घंटा. ३ सेवक–आराधना करनेवाला. ४ गृहस्थ, श्रावक. ५ फरमान. ६ सुवर्ण और मीट्टीका दृष्टांतसें. ७ आत्मस्वरूप. ८ अनंत ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वीर्य.

श्री विश्ववन्द्ये !

विविध जैनतत्त्व विचारमय-

जैन-हितबोध.

(हिन्दी-भाषानुवाद समलंकृतः)

वस्तुनिर्देशात्मक-मंगलाचरण.

(दोहरा-छंद.)

अज अनादि अव्यक्त प्रभु, चिदानंद चिद्रूप;
जिन्हके चरनसरोजमें, नमत सदा सुरभूप. १
तिन्हको सुमिरन करि लिखुं, हिंदि " जैन हितबोध; "
पढियें पाठक नित प्रति, तजि मततत्त्व विरोध. २
सार सार सब संग्रहो, तजिकें दोष तमाम;
लीजें परमानंदमें, अनुभो सुख अभिराम. ३

श्री वीर प्रभुका निर्वान और अपना कर्त्तव्य.

देवेन्द्र, नरेन्द्र और योगीन्द्रोंके परमपूज्य चरम तीर्थंकर श्री मन् वीराधिवीर महावीर प्रभुजीने उत्कृष्ट योग और तपके बलमें

घाती कर्मका संपूर्ण क्षय करके अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र और अनंत वीर्यरूप अनंत चतुष्टय संप्राप्त करके—प्रकट करके स्वर्ग मृत्यु पातालके जिन त्रिविध देवोंके बनाये हुवे समवसरणके बीच सुरस्थापित पंचम प्राकारमें सिंहासनपर विराजमान होकर बारह पर्षदाओंके मध्यमें भानुवत्—महा देशनामृत वर्षाकर भव्य समूह क्षेत्रको सुरसमय बनाकर सम्यक्दर्शन—बोध बीजकों अंकुरित किया. और इंद्रभूति वगैरः गनधरजीकों त्रिपदी देकर साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविकारूप चतुर्विध श्री संघ (तीर्थ) की स्थापना की, उसी वखतसें इस भारत भूमिमें आहोजल्लालीके साथ जैन शासन ज्यादे तौर पर विजयवंत हो प्रवर्त्तने लगा और प्रभु-जीके परम पावन गुणों—अतिशयोंसें सर्वत्र शान्ति फैलाने लगी. प्रभुजीके परम पुनित अमृत वचन श्रवन करकें प्राणि मात्र करुणा बुद्धिके साथ उत्तम प्रकारकी मैत्री, मुदिता और मध्यस्थता धारन करनेवाले हुवे. अविवेक, अनीति, अन्याय या असत्यका मार्ग त्या-गन करकें विवेक पूर्वक नीति न्याय या सत्य मार्गका अवलंबन करनेवाले हुवे. साधर्मीजनोके साथ परम प्रमोद भाव धरनेवाले हुवे. प्रतिज्ञा करनेमे दक्ष हो ग्रहित प्रतिज्ञाकों प्राणकी तरह पा-लने लगे. शील—ब्रह्मचर्यकोंही सच्चा भूषण या अलंकार, विवेककोंही सच्चे लोचन, और सत्यभाषणकोंही मुखमंडन मानने लगे. उत्तम आचार और उत्तम विचारोंमें कुशल तथा अप्रमादी हुवे. संत सु-साधुजनोंके दास बने हुवे रहने लगे. मन और इन्द्रियोंका यथायोग्य

निग्रह करने लगे. कषाय तापको दूर करनेके लिये श्री सर्वज्ञ भाषित उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, और संतोषका सेवन करने लगे. मदिरादिक दुष्ट व्यसनोंका बिल्कुल त्याग करनेमें कटिबद्ध हो रहे. विषय रसको विषवत् गिनने लगे. निद्राको वैरिणी मानने लगे. और स्त्री विकथादिको हालाहल-झहर समान निंदने लगे. स्वल्पमें प्रमाद मात्रोंको कट्टे दुश्मन जैसे मानकर उनसें विराम पाए. समस्त जीवोंको आत्म सादृश गिनकर उन्होंका संरक्षण करनेके वास्ते तत्पर हुवे. किसी जीवको क्लेश न हो वैसा हित मित भाषन करने लगे. परद्रव्य और परदारा तर्फ जालांजली देने लगे-यानि पराये धन-द्रव्यको धूलके ढेले या लोष्टवत् निर्माल्य गिनने लगे और पराइ स्त्रीको काली नागन समान जानकर उनसें दूर रहने लगे. श्री सर्वज्ञ प्रभुजीकी आज्ञाको शेषावत् मस्तकपर धारन करने लगे. अर्थको अनर्थ मूल जानकर उनका सप्तक्षेत्रादिमें यथा अवसर विवेकसें व्यय करने-खर्चने लगे. दीन दुःखीजनोंकी भीर भांगनेको तत्पर हुवे. सीदाते-दुःखपाते हुवे साधर्मी भाइयोंको भक्तिभरसें उद्धरनेके लिये तन मन धनका सदुपयोग आदरने लगे. अपने साधर्मीजनोंकी उन्नति होनेमें अपनी ही उन्नति मानने लगे. अपने साधर्मीभाइयोंकी न्यूनता सहन न हो सकनेसें उनको अपने बरोबर करनेके लिये बन सके उतनी कोशीश करने लगे. स्वधर्मी भाइयोंकी अधिकता देखकर अंतःकरणसें खुशीभी होने लगे. राग द्वेषका विवेकमें विजय करनेको, श्री वितराग देवकी साक्षात् शान्त रस-

दायी–शान्तरसमय मोहक मुद्राकी, तथा सिद्धांत–आगम वानीकी परम भक्ति भावसें सेवा उपासना करने लगे. क्लेशकों तो दारिद्र्य-का मंदिर जानकर उस्का केवल परिहार करने लगे. जुँठा कलंक, चुगलीखोराइ और अवर्णवाद–बुराइ–वदी करनी इन्होंकों अ-न्यायरुप समझकर इन्होंसें तद्दन अलग हो जानेमेंही यत्नवान् हुवे. सुख और दुःखके वक्त समभावसें पवित्र नियम धुराकों अडगता-सें धारन करकें स्वजैनता सार्थक करने लगे. माया–मृषा, बोलना कुछ और करना कुछ उनकों तो छौंकारे हुवे झहरके समान गिन-कर तजवीजसें परिहरने लगे. और मिथ्यात्वकों तो परमशल्य, पर-मरोग तथा परम विषके समान जानकर उनका स्पर्श भी नहीं करतेथे. ऐसी बहुतही कल्याणकारक उमदा नीतिकों अवलंबकर सुश्रावक वर्ग प्रवर्त्तता हुवा. और सुसाधु वर्ग तो महाव्रत रुप महान् प्रतिज्ञाओंकों सद्विवेकसें ग्रहण करकें सिंहकिशोरकी तरह बहादु-रीसें पालन कर सर्वज्ञ पुत्रका उत्तम बिरुद सार्थक करते हुवे सफरी जहाज मुवाफिक यह संसारसमुद्रकों सरलतासें आप खुद तिर-तेथे और अपने आश्रितोंकोंभी यानि साधु श्रावकोंकों भी सुख पूर्वक तिरासकते थे. और परोपकारकों अपना पवित्र स्वार्थरु-पही गिनते थे.

ऐसी परम उदार सर्वज्ञ नीतिका सम्यक् सेवन करते हुवे साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविकारुप जंगमतीर्थ अपने समागममें आते हुवे भव्यजीवोंको सदुपदेश जलसें सिंचन कर–पावन करकें श्री

जिनशासनकी शोभा–महात्म्य बढाकर शासन–प्रभावनारुप परम लाभको पातेथे. यह तमाम प्रभाव धर्मचक्रवर्ती श्री जिनेश्वर देवकाही गिना जाता है. क्रमशः वीर परमात्मा भूमिपर प्रतिबंध–रहित बिगर विचर कर, अनंत भव्यसत्वोंका उद्धार कर, आपके बाकी रहे हुवे अघाती कर्मोंका क्षय करके पंचमी गति–मोक्षमे सिधार गये और अक्षय, अनंत, अव्याबाध, अपुनर्भव, शिवसंपत्तिके स्वामी हुवे.

परमसिद्ध निरंजन हो लोकाग्र स्थिति भजकर परम निवृत्ति सुख पाए. इसका नाम निर्वाण–कल्याणक कहाता है. जब चरम तीर्थंकर श्री महावीरस्वामी निर्वाण प्राप्त हुवे तब देवेंद्रादिकोंका आसन चलित होनेसें निर्वाण ज्ञात होनेही शोक सहित निर्वाण स्थल आकर अपना अपना उचित कृत्य कर कर, भाव उद्योत भगवंतका विरह होनेसें द्रव्य उद्योत किया यानि दीपालिका प्रकट की. उसी दिन उसी सबबसें लोगोंमें भी सब जगहें मंगलकर दीवाली पर्व जाहिर हुवा. परमात्माश्रीने अंतमें सोलह प्रहरकी भव्यप्राणीओंको अखंड देशना दीथी, जिसमें पुण्य पाप फल विपाकका स्वरुप प्रतिपादन किया था. दुसरेभी बिगर पूछे अनेक अध्ययन कहकर जन्म मरणके कुल बंधनोंको छोड प्रभु सर्वोत्कृष्ट मोक्षसुख पाए. वैसे उत्तम सुख प्राप्त होनेके वास्ते उत्कृष्ट भावसें जो भव्य प्राणी दीवाली पर्वके दिन छट्ट अट्टमादिक तप कर विधवत् श्रीवीरप्रभुका ध्यान धरते हैं वे भी परिणाम विशुद्धिसें

भवदुःखका अंत लाकर श्री गौतमस्वामीजीकी तरह निर्मल अध्यवसाय योगसें शुक्ल ध्यानका महान् लाभ प्राप्तकर, समस्त घाती कर्मोंको क्षयकर केवलज्ञान पाकर, परम महोदय–मोक्षपदका स्वामी होते हैं. श्रीगौतमस्वामीजीके पवित्र दृष्टांतसेंही सिद्ध होता है कि प्राणी मात्रकों अंतमें अपना कल्याण साधनेके वास्ते सद्विवेक धारन किये बिगर छुटकाही नहीं हैं. जो भव्यसत्व जन–सामग्री विद्यमान होंने पर सद्विवेक धारन करकें उसका लाभ लेता है उनका तो जन्मही सफल है; किन्तु जो मोहग्रसित मूढ मनुष्य अैसी मुस्केलीसें मिलनेवाली सामग्री प्राप्त होंने परभी उनकों निकमी गुमाते हैं वे पामर प्राणीओंकों पीछेसें अवश्य पिस्ताना पडता है. अैसा समझकर शाहाने मनुष्योंने सद्विवेक सजनेके वास्ते और अविवेक तजनेके वास्ते जितना बन सकें उतना प्रयत्न करनाही उपयुक्त है.

सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा श्री वीरप्रभुके अपन सब सेवक कहे जाते हैं: तो भी अपन परम उपकारी पिता समान श्रीमहावीर स्वामी प्रभुजीकी पवित्र आज्ञा–मर्यादा उलंघन कर स्वच्छंदपनेसें अपनी मोज मुजब अच्छे मार्गकों छोडकर उन्मार्ग भजें तो क्या अपनकों थोडी शरम पेदा करनेवाला प्रकार है ? अपने सगे भाइसेंभी आलें दर्जेके अधिक प्रेमपात्र अपने साधर्मीभाइयोंके साथ भेदभाव यानि जुदाइ रखकर कुसंप करे वो भी कम-स्ती [illegible] है ? अपन साधर्मीभाइयोंके साथकी श्री सर्वज्ञ-

कथित साधर्मीवात्सल्यताकी उत्तम नीति रीतिकों छोड अपनी मरजी मुजब संत साधुजन धिःकार के निकाल देंवे. वैसी बेढंगभरी नीति ग्रहण कर मदोन्मत्ततासें हितवचनरूप अंकुशकोंभी हिसाबमें न गिनें वो कैसा निंदापात्र और दुःखजनक गिना जावे? द्रव्य और भावसें दुःखपाते हुवे साधर्मी भाइयोंकों अपनी शक्तिके अनुसार मदद देनेकी अपनी पवित्र फर्ज विसर कर, उनके हृदय भेदक दुःखोंके सामने टगमगाकर देखाही करें, और दूसरे यश कीर्तिकी खातिर अनेक लखलूट–उडाउ खर्चकी अंदर पैसेका गेर उपयोग कर उपर बतलाये हुवे दुःखग्रसित साधर्मीयोंकों संगीन आश्रयमें भाग लेनेकी सची तक के वक्त निर्माल्य बहाने निकाल उलटा मुंह फिरा लेवें वो कैसा और कितनी लज्जा पैदा करनेवाली तथा हँसने योग्य वार्त्ता है? बडेखां कहलवाकर औरत, बाग–बगीचे और बग्गी–फाटनमें बेशुमार पैसा बरबाद करनेसें नहीं डरता है; लेकिन अच्छे धर्मक्षेत्रकी अंदर शुभ परिणामसें निः स्वार्थके साथ सद्द्रव्यका सदुपयोग करनेमें संकुचित मन करनेवाले विवेक विकल जनोंकों किस वस्तुकी उपमा देवें वो भी शोचने जैसा है! अलबत परभवका साधन करनेमें पीछे हठनेवाले जन किसी शुभ–अच्छी उपमाके लायक तो हो सकते ही नहीं. इनसें भी ज्यादे शोक करनेकी खातिर अपने सर्वस्व धनकों भी या होम करनेकों तैयार होते हैं. ऐसे स्वच्छंदी जनोंका अस्तित्व जगतमें केवल भारभूत ही माना जाता है. मिली हुइ दौलत जब अंतमें ऐसे विवेक विक-

लोंकों त्याग करकें चली जाती है, तब वे अज्ञजन आंख मसल कर रोतेही रहते हैं, और स्वच्छंदपनेसें चलनेके प्रायश्चित मुवाफिक पश्चात्ताप करनेकी अंदर बाकी मै रहा हुवा आयुष पूर्ण कर यमराजाके महेमान होते हैं. तथा स्वच्छंदपनेके सच्चे फलकी परीक्षा तो वहां ही होती है. और बुद्धिबल पाने परभी उसका सदुपयोगके बदलेमै गैर उपयोग करै उसिके वेसे ही बेहाल होते हैं. वास्ते तत्त्वातत्त्व विचार करिकें अतत्त्व छोडकर तत्त्व ग्रहण करना यही अकलमंद पुरुषोंका कर्तव्य—जीवनसार्थक है; तौ भी कितनेक जन अनेक कुतर्क, छल प्रपंचकी रचना करकें भोलेभाले जीवोंकों वागजालमै या मोहजालमै फँसाकर अपने और दूसरेकों अनर्थ प्राप्ति कराते हुवे अनेक दुराचारीजनोंकों अपन प्रत्यक्ष अपनी आंखोंसें ही देखते हैं. ऐसे अनाचार या दुराचारकों सेवन करनेवालोंकी बुद्धि ही उन्हीके और दूसरोंके द्रव्य और भाव प्राण हरनेके लिये जबरदस्त शस्त्र रुप ही होती है. वैसी नीच बुद्धि धारन करनेसें अपने आपकों और दूसरोंकों भी अनेकशः अधोगतिका ही कारण बनता है; तदापि दुर्जन अपना स्वभाव नही छोड देते हैं वो प्रत्यक्ष हानिकारक ही है.

ऐसा समझकर सज्जन अपनी सुबुद्धिका बन सकै वहां तक सदुपयोग करनेकी तक हाथसें कभी नही गुमाते है. शुभ आशयवाले सज्जन दुर्जनोंकी तरह कबी भी निर्दय परिणामी हो कर जीवहिंसा नही करते हैं, असत्य नही बोलते हैं, पराये द्रव्यकों हर

लेनेका इरादा ही नही रखते हैं, परार स्त्रीकी तर्फ निगाह भी नहीं डालते हैं और पुद्गल द्रव्यमें मात्र मुर्छा भी धारन नही करते हैं. सर्वज्ञ पुरुषोंकी या सर्वज्ञ पुत्रोंकी हितशिक्षा पाकर परमयसें डरकर पापका परिहार करते हैं. क्रोध-मान-माया-लोभ इन रुपी चांडाल मंडलोंका संग करना भी नही चाहते हैं. क्रोध कषायके तापको चंदनसें भी ज्यादे शीतल समतारससें शांत करते हैं. जातिमद, कुलमद, बलमद, तपमद, बुद्धिमद, रुपमद, लाभमद और ऐश्वर्य-मद-इन रुप आठ उंचे शिखर युक्त मानरुपी दुर्धर पहाडको मृदुतारुप वज्रसें तोड डालते हैं. मायारुपी नागिनीके झहरको ऋजुतारुप जांगुली मंत्रके योगसें दूरकर देते हैं, और लोभरुपी अगाध दरियावकों संतोष अगस्त्यकी सत्सहायतासें शोषन करलेते हैं. राग और द्वेषको कट्टे दुस्मन समझकर उनका विश्वास नही करते हैं मतलब कि संसारके क्षणिक पदार्थोपर राग या द्वेष नही करते हैं. कलहको अपने और परायेके कलेशका कारण जानकर बिलकुल त्याग करते हैं. दूसरेके शिरपर झूंठा कलंक चढाना, रहस्य भेद करना (चुगली करना) और परनिंदा करनेका स्वभाव उन्होंको कर्मचांडाल जैसे समझकर तद्दन त्याग देते हैं. सुख किंवा दुःखकी सामग्रीके वक्त समभाव रखकर हर्षविषाद नहीं करते हैं. माया-कपट और झूंठको; अगर कहेना कुछ और करना कुछ-इन्होंको हालाहल विष जैसे जानते हैं, और मिथ्यात्वको समस्त पापका ही मूल गिनकर उसका जरासा भी संग नही करते हैं. इस तरह स-

कल पापनिवृत्ति पूर्वक धर्म धारन करनेसें सज्जन अपना जन्म सफल करते हैं. पापकर्म मै सच्ची लगनी लगानेसें पैदाहुइ दुष्ट वासना त्रंथ हुवे विगर अैसी उत्तम-शुद्ध-उदात्त भावना पैदाही नहीं होती हैं. सज्जनोंका स्वभाव हंस समान है और दुर्जनोंका स्वभाव सूअरकी समान है. साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका-यह चारों सर्वज्ञ प्रभु श्री वीर परमात्माके सेवक होनेसें वे परोपकारी परमात्माकी प्रजारुप गिनाये जाते हैं. अलबत, परमात्माकी पवित्र आज्ञा मुजब चलनेके कामी सुसाधु और प्रभुजीके वृद्ध-वडे पुत्र कहे जाते हैं. आर्या चंदनबाला, मृगावती वगैरः महासतीयोंकी तरह परम विनय भाव पूर्वक पवित्र महाव्रत पालनेमें तत्पर सुसाध्वी समूह प्रभुजीकी वडी पुत्री, और सुलसादिककी तरह सुश्रद्धा धारिणी श्राविकाए प्रभुजीकी छोटी पुत्री गिनी जाती हैं.

इसपरसें एकही परमात्माकी पवित्र आज्ञाकों पालनेवाले चतुर्विध संघ के वीच एक दूसरेका कैसा गाढ सम्बन्ध रहा है वो स्पष्ट मालूम हो आता है. सांसारिक संबंधसें भी ये धर्म संबंध कितना पवित्र और ज्यादे किम्मती है? वो लक्षमें लेने लायक है. संसारचक्रकी अंदर कर्म के वश्य हो जानेसें भ्रमण करने के वक्तमें माता-पिता-पुत्र-स्त्री वगैरः का संबंध मिलना जैसा सरल है वैसा उपर कहा गया धर्मसंबंध-मिलाप सुलभ नहीं है; लेकिन वडा दुर्लभ है; तदपि कोइ कोइ सुलभबोधी भाग्यवंत भव्यजन भवाटवी के बीच अतिदुर्लभ धर्म पाकर अपने साधर्मीभाइ और भगिनीयोंकी तर्फ सच्चा वात्सल्य भाव रखते है उन्हीकों ही धन्यवाद हैं.

बही धर्मज्ञ स्वधर्मीभाइ और भगिनीओं के गुनरत्नोंकी उमदा किम्मत कर सकते हैं. पीडापाने हुवे साधर्मीओं के गुस निमित्त सभी अंतरंगवृत्ति उन्हीं के ही दिलमें रमन करती है, अपने साधर्मीयों के दुःख देखकर वैसे भाग्यवंतोंको ही कंप छूटता है. यथाशक्ति तन-मन-वचनसें स्वार्थकी आहुती देकर स्वधर्मीओंकी सची सेवा भी वैसे ही भाग्यभाजन बजाते हैं, और वैसेही धर्मात्मा उत्तम प्रकारकी धर्म बाबतकी तालीम देकर उनकों धर्म के सन्मुख, और व्यवहारिक कार्यकी भी तालीम देकर उनकों व्यवहार कुशल करते हैं, जिस्सें वे इस लोक और परलोकमें सुखी होते हैं. सचा साधर्मीक संबंध समझमें आये विगर ऐसी परोपकारवृत्ति क्यों कर जाग्रत हो सके ! ऐसे अच्छे आशयवाले सज्जन क्या कबी भी अपने धर्म बान्धवोंसें भेद भाव रक्खें ? कभी नहीं ! क्या उन्होंका अतुल दुःख देखकर निःशंकतासें मोज मुजब मजाह उडावें ? किंवा अपने और परायेके श्रेयका अति उत्तम मार्ग छोडकर झूठे मान-मरतबेकी खखटंटमें उपस्थित हो जावे ? अरे ! स्वपर के उद्धारका श्रेष्ठ मार्ग समझ शुद्ध कुलीनजन कबी भी अनर्थकारी मार्ग अंगीकार करें ही नहीं ! वैसे शाहाने सुजन अच्छी तरहसें समझते हैं कि-ज्ञानी पुरुष अपने स्वार्थ विगरही मित्र-बंधु हैं, वैसे महात्मा तो फक्त परमार्थ के दावेसें ही अपनकों हितमार्ग बतलाते हैं; तो वैसे महाशय पुरुषोंकी हितशिक्षाओंका अनादर करकें स्वच्छंदवृत्ती भज लेंनी ये केवल उन्मादरुप-दीवानपना ही है, अमृतकी बोतल ढोल देकर उसमें विष भर लेने जैसी बात है, सुवे के थालमें धूल

भरने के जैसा प्रकार है, चिन्तामणिरत्नकों कव्वे उडाने के वास्ते फेंक देना उसीकी बराबर है, कल्पवृक्षकों कुल्हारेसें काटकर वहां आकका पेड रोप दे वैसा है, हाथी बेचकर गद्धा खरीदने के जैसा काम है. समुद्रपार जाने के समर्थ जहाजकों छोडकर पत्थरकों पकडने जैसी मूर्खता है, सूत के धागे के लिये नौसर मुक्तहार तोड डालने जैसा वाहियातपना है, खींटी के खातिर महेल गिरादेने जैसा बेवकूफीका काम है, और एक पाटियेकी खातिर भर समुद्रमें जहाज भांग डालने के जैसा अहंबकपनेका कार्य है. जो कुबुद्धिजन स्वच्छंदतासें चलकर सर्वज्ञ कथित सत्य मार्गकों लुसकर उन्मार्ग ग्रहण करते हैं, वैसे निपट नादान लोग सज्जन समाज के भीतर हंसी के पात्र या निंदा के पात्र होते है. इतना ही नहीं, मगर विषय कषाय के तावे होकर किये हुवे दुष्कृत्यों के योगसें भवांतरमें नरक निगोदादि महादुःख के भागी होते हैं; ऐसा समझकर सज्जन परभवमें डरकर स्वच्छंदता छोड सर्वज्ञ कथित सत्य मार्गकों ही स्वीकृत करके निर्भयतामें उसीका ही सेवन करते हैं, तो अंतमें वे महानुभाव दुःख के दरियावसें पार होकर अक्षय सुख संपत्ति स्वाधीन कर सकते है. ऐसे अनेकानेक दृष्टांत अपन आगमद्वारा सुनकर अपना सकर्णपना सार्थक करने के वास्ते वैसे महाशयों के चरित्र अमृतका पानकर स्वकर्तव्य समझकर स्वपरका श्रेय साधन-हितार्थ सब तरहकी कायरता छोडकर त्रिकरण शुद्धिसें सदुद्यम करना ही लाजिम है.

करनेके वास्ते और उन्हींसें सावधान रहनेके वास्ते निःस्वार्थ बुद्धि-सें ज्ञानी पुरुष समझाते हैं; तदपि मुग्धतासें करके वैसे हितोपदेशकी वेदरकारी–अनादर करके स्वच्छंदतासें अपन उक्त दोषोंकोंही पोषन कर उन्हीकी ही पुष्टि करते है ये कैसा अनुचित वर्त्तन है? अपने अनादि-के अंतरंग पक्के दुश्मनोंका अहर्निश पोषन करनेसें–उन्होंकी आज्ञानु-सार चलनेसें और उन्हीकाही विश्वास करनेसें अपनकों क्यौं करके क्षेमका संभव होवे? अप्रशस्त रागादि दुश्मनोंकों दूर करनेके वास्ते श्री जिनेश्वर देवनें सर्वज्ञदर्शित सत्क्रियामें प्रीति पूर्वक प्रवर्त्तनेका फरमान किया हैं; तदपि अपन बहुत करके सत् क्रियाका स्वरूप प्रयोजनादि यथार्थ न समझनेसें सर्वज्ञ सूचित सत्क्रियाकों विवेक-पुरःसर प्रीति और स्थिरतासें खेद रहित सेवनेके बदलेमें बहुधा अरुचि–अस्थिरतादि सेवन करतेही रहते हैं ये कैसा बेसमझका कार्य है? श्रीजिनेश्वर, राग, द्वेष और मोह महा मल्लकों सर्वथा जेर करनेवाले–जगत् प्रभुकी प्रसन्नता पूर्वक स्थिरता लाकर पूर्ण प्रीतिसें पूजार्चना करने वाले पूजक खुद आपही पूज्यपदकों पाते हैं. अरे! पंच अभिगमकों समालकर, विवेक पूर्वक विकथा छोड-कर, पांचों इंद्रियोंका निग्रह कर, पूर्वोक्त रागद्वेषादिरूप चांडाल चतुष्ककों तजकर, उत्तम शील संतोष धारनकर विधि सहित प्रभु भक्ति रसिकजन, जो शांत रसका पान करकें समस्त भवतापकों दूर करते हैं, उनका मान, भूले भटकनेवाले भोले और शठजनोंकों क्यौंसें होवे? श्री सद्गुरुकी कथनी और रहनीकों पूर्ण प्रकारसें

मन किस वास्ते करनेका है ? दान, शील, तप, भाव, वैराग्य, और सौजनादि सद्गुणोंका सेवन अपनकों किस वास्ते करनेका है? इन सब बाबतोंके लिये सम्यग् ज्ञान मिलाना कितना जरुरका है ? उन उन धर्म क्रिया संबंधी यथार्थ ज्ञान पूर्वक विवेकी सद्वर्त्तनसें अपने कितना उमदा फायदा मिला सकेंगे ? अहा ! उन उन पवित्र सर्वज्ञ परमात्मा प्रणीत धर्म क्रिया करनेमें अपनकों कितनी भारी लज्झत मिष्टता आयेगी ? व्हो तो खास अनुभव गम्यही होनेसें उसका वर्णन नहि किया जाता है. पवित्र धर्म संबंधी समस्त सत्क्रिया करनेका तथा अनादि स्वच्छंदतासें करनेमें आती हुइ कुल असत् क्रिया छोड देने के लिये मूल हेतु विषय वासना तजकर निष्कषाय शुद्ध आत्म स्वभाव प्रकट करनेके वास्ते अपने अंतरंग शत्रु राग, द्वेष और मोहादिक महान् दोष दूर करनेका है. अपनकों समझ रखना चाहियें कि, अकेले राग और द्वेष कि जो मोहके पुत्र हैं और अपनी अज्ञानतासें मोहराजाके जोरसें अपनकों भव भव संताप देते रेहते हैं; तो भी तत्त्वसें उन्होंकी मित्रकी तरह सेवना करतेही रहते है. अकेले राग, द्वेषही अखिल जगतके जीवोंकों जेर करनेके लिये शक्तिमान् हैं, तो ये दोनु मोह समेत जेर करनेका दोश करें तो फिर कहनाही क्या ? ज्ञानी पुरुष तो इन तीन्होंकों दुश्मनही कहते हैं. जन्म जन्ममें पवित्र धर्मकी समर्थ सहायता सिवायके अशरण अनाथ प्राणीयोंकों बहुत बहुत तरहसें संतापने वाले वे तीनूका किंचित् भी विश्वास न

करनेके वास्ते और उन्हींसे सावधान रहनेके वास्ते निःस्वार्थ बुद्धि-से ज्ञानी पुरुष समझाते हैं; तदपि मुग्धतासें करके वैसे हितोपदेशकी बेदरकारी-अनादर करके स्वच्छंदतासें अपन उक्त दोषोंकोही पोषन कर उन्हीकी ही पुष्टि करते हैं ये कैसा अनुचित वर्तन है ! अपने अनादि-के अंतरंग कट्टे दुश्मनोंका अहर्निश पोषन करनेसें-उन्होंकी आज्ञानु-सार चलनेसें और उन्हींकाही विश्वास करनेसें अपनकों वर्षों करके सेपका संभव होवे ? अप्रशस्त रागादि दुश्मनोंको दूर करनेके वास्ते श्री जिनेश्वर देवनें सर्वज्ञदर्शित सत्क्रियामें प्रीति पूर्वक प्रवर्तनेका फरमान किया हैं; तदपि अपन बहुत करके सत् क्रियाका स्वरूप प्रयोजनादि यथार्थ न समझनेसें सर्वज्ञ सूचित सत्क्रियाकों विवेक-पुरःसर प्रीति और स्थिरतासें खेद रहित सेवनेके बदलेमें बहुधा अरुचि-अस्थिरतादि सेवन करतेही रहते हैं ये कैसा बेसमझका कार्य है ? श्रीजिनेश्वर, राग, द्वेष और मोह महा मल्लकों सर्वथा जेर करनेवाले-जगत् प्रभुकी प्रसन्नता पूर्वक स्थिरता लाकर पूर्ण प्रीतिसें पूजार्चना करने वाले पूजक खुद आपही पूज्यपदकों पाते हैं. अरे ! पंच अभिगमकों समाल्कर, विवेक पूर्वक विकथा छोड-कर, पांचों इंद्रियोंका निग्रह कर, पूर्वोक्त रागद्वेषादिरूप चांडाल चतुष्ककों तजकर, उत्तम शील संतोष धारनकर विधि सहित प्रभु भक्ति रसिकजन, जो शांत रसका पान करकें समस्त भवतापकों दूर करते हैं, उनका भान, भूले भटकनेवाले भोले और शठजनोंकों कहांसें होवे ? श्री सद्गुरुकी कथनी और रहनीकों पूर्ण प्रकारसें

प्रमाद रहित संत—सुसाधु जनोंकी पावन चरण सेवनामें अभिमुख हो रसिक सुविनीत शिष्यवृंद भ्रमर गणकी तरह जो परिमल—सुवासना लूंटते हैं उनका खियाल भी सद्गुरु सेवा विमुख अविनीत शिष्य समूहको कहांसे आवे ?

श्रीसिद्धांत—सर्वज्ञ वीतराग प्रणीत होनेसें सद्विवेकी सज्जनो द्वारा संपुर्ण श्रद्धासें ग्राह्य कर और पूर्वापर विरोधके दोष त्याग कर सर्व सम्मत आगम रहस्य रूप मकरंदका यथेष्ट श्रीसद्गुरुकी सम्यक् सेवा भक्ति पूर्वक पानकरनेवाले मधुकर समान मुनिगण जैसी मिष्टता मिला सकें उनके अनंतवे हिस्से भी क्या अमृतरस आ सकें ? कभी नहीं ! तथापि सद्भाग्य योग्यसें प्राप्त हुइ सद्बुद्धिद्वारा उक्त अमृतरस चखनेका स्वाद जो पंच प्रमादके तावेदार मंदभागी है वे नहीं पा सकते हैं और बुद्धिका दुरुपयोग करने तकभी नही चुकते हैं, वैसे मूर्खशेखर जन स्वच्छंदतासें कितना भारी नुकशान उठाते हैं वो कहा भी नही जाता है. श्रीसर्वज्ञ प्रणीत सिद्धांतके कथन मुजब अक्षरशः चलन रखनेकी अपनी अति पवित्र फर्ज भूलकर उलटे पवित्र आगमोंकी आशातना होवें वहांतक अपन अज्ञ भाइयें उपेक्षा करते हैं, वो वहुत ही अनुचित है. श्री सर्वज्ञ भाषित सिद्धांत निष्पक्षपातसें जगत मात्रको हितकारी होनेके लिये उन्होंका वहुत मान संभालना—उन्हीका संरक्षण करना वो अपनी मुख्य फर्ज अपने लक्षमें लेनी ही योग्य है.

श्रीसंघ—श्री सर्वज्ञ प्रभूकी पवित्र आज्ञा मुजब वर्त्तने वाले

मुसाधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकायें जंगम तीर्थरुप गिने जाते हैं. श्री तीर्थंकर प्रभु खुदभी उक्त गुणाकर संघका उचित आदर करते हैं तो अन्य सामान्य प्राणियोंको उक्त गुण सागर श्रीसंघकी तर्फ कितने सन्मानकी दृष्टिसें देखना उचित है, उनका सम्यक् विचार करना उपयुक्त है. साधर्मीभाइ और भगिनीओ परम पूज्य पिता स्थानीय श्रीवीर परमात्माकी पवित्र संतती पुत्र पुत्रीपणेका हक धराते है, तो उन सभीकों एक दूसरेके साथ कैसी सभ्यता रखना तथा सुशीलता सहित सुसंपधारी गुण ग्राहक बुद्धि-द्वारा शासनकी शोभा बढाना चाहियें ? ऐसी अगत्यकी बात तर्फ दुर्लक्ष बतला कर मरजी मुजब चलकर दुग्धकी अंदरसेंभी जंतु ढूंढने जैसा अति अनुचित वर्त्तन रखना ये कितनी शरम पैदा करने वाला प्रकार गिना जावे ? श्री सर्वज्ञ भगवान्का, निर्ग्रंथ अणगार मुमुक्षु जनोंका, श्रीसिद्धांतका या चतुर्विध संघका फरमान तत्त्वसें एक समानही होना चाहियें; क्यों कि उन सभीमें मोक्ष साधनरुप महान् हेतु समानही रहा हुवा है. नीति-न्याय या प्रमाणिकपणे के उत्तम कानून मुजब चलनेके बदलेमें श्री सर्वज्ञ प्रभुकी गिनी जाती प्रजा अनीति-अन्याय या अप्रमाणिकपणेसें चले ये कितना भारी शरमाने जैसा प्रकार है ? सर्वत्र सुखदायी सन्मार्गकों छोडकर उन्मार्ग ग्रहण करना सो कैसे भयंकर दुःखकों पोषन करनेद्वारा होवे ? दश दृष्टांतसें दुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर चिंतामणि समान सर्वज्ञ भाषित धर्मकों सम्यग् सेवन करना छोड

कर बिलकुल कट्टे दुश्मन या हालाहल विप समान विषय कषाय और विकथादि महान् प्रमादोंकों पोषन करना वो कैसे कटुफलोंकों देनेमें समर्थ होवेंगा ? वो बात जरा गौरसें शाहाने मनुष्यकों शोचनी लायक है. समस्त पुन्यकी गठडी गुमाकर रीते हाथोंसें–इस दुनियांकों छोडकर चलाजाना ये कैसी और कितनी अधमता है ? गुणानुरागी मध्यस्थ सज्जन तो ऐसी बेढंग भरी रीति स्वीकृत करे या अनुमोदे भी नहीं. वे तो श्री जिनराजजी के हुकमकों अंतरंगसें अनुसरने वालेकोंही सत्ववंत गिनते हैं, उन्हीके उपर राग–प्रीतिभी धारन करते हैं. उन्हीकाही विशेष करकें हित करनेकी प्रेरणामें प्रेरित होते हैं. यावत् पूर्व पुण्यके योगसें प्राप्त हुइ यह दुर्लभ सामग्रीकों सफल करनेके वास्ते यथाशक्ति श्री जिनाज्ञाकों अनुसरने के लिये लक्षवंत सज्जनोंकी तर्फ प्रीति वा संपूर्ण ममता रखते हैं. वैसे साधर्मी जन तर्फ पूर्ण प्रेमयाभक्ति भाव वैसे महाशयही रखते हैं. उनकों अपने प्राणप्रीय मित्र या बान्धवके समान गिनते हैं. यावत् वैसे सत्त्ववंत विवेकी सज्जनोंकी खातिरके वख्त अपना सभी तन–मन–धन–जीवन अर्पण कर देते हैं. प्रिय भ्राता और भगिनीओं ! आप सब शोच करोकि जिस धर्मकी खातिर सज्जन लोग इतनी बडी भारी खंत रखते हैं, स्वार्थकी आहूती देनेमें कटिबद्ध रहते हैं, यावत् अपने प्राणोंकी भी परवाह न रखते क्षण भरमें मरनेकों आतुर हो जाते हैं, उस पवित्र धर्मके गहेरे रहस्य प्राप्त करनेके वास्ते और उसी मुजब चनेके स्वजन्म सफल करनेके वास्ते विवे-

की जनोंकों कितनो नम्रतासील रहना उचित है ? संबोध सित्तरी ग्रंथमें कहा है कि:-' आणा जुत्तो संघो सेसो पुण अट्ठिसंगाओ- यानि जो परम श्री जिनराजदेवकी आज्ञा मुजब चलते हैं वैसे साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकाओंका श्री संघमें समावेश होता है, और उससें विरुद्ध चलनेवाले-स्वच्छंदी लोक तो केवल हड्डी, मांस, मेद, रुधिर वगैरः के पुतलेरूप मतलब विगर के हैं. वैसे असार सत्त्वहीन जनोंका श्री संघमें समावेश नहीं हो सकता है, ऐसा समझकर विवेकी मनुष्योंकों अपनी अपनी साधु, साध्वी, श्रावक या श्राविकारूपकी उत्तम फर्ज मुजब काम बजाकर अपना नाम सार्थक करने के और जैन शासन दीपाने के वास्ते प्रयत्न करना चाहियें; क्यों कि ऐसे सार्थक नामधारी चतुर्विध संघसें ही जैन शासनकी शोभा है. ऐसा गुण समुद्र श्री संघ जगत् मान्य होता है. वो जंगमतीर्थरूप होनेसें समागममें आनेवाले भव्य जीवोंको पावन करते हैं. जिन के पूर्ण भाग्य होवै उन्हींकों ऐसे पवित्रतीर्थरूप श्री संघका दर्शन, वंदन, पूजन, वगैरः होता है. श्री संघ गुणरूपी रत्नोंसें भरा हुवा रत्नाकर-समुद्र है; वास्ते गुणानुरागी सज्जनोंकों अवश्य आदरणीय और पूजनीय है. श्री संघकी सम्यग् सेवनासें अनेक भव्यजन यह भीष्म भवोदधिकों तिरकर सब दुःखोंका अंत कर अक्षय सुख पाये हैं. हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, और परिग्रहरूप पंच महान् आश्रव यानि कर्मकों दाखिल होनेके दरवज्जे खुले ही होनेसें आत्मा बहुत ही मलीन होता है,

और वे आश्रवद्वार बंध करकें अहिंसा सत्यादि संवर के सम्यग् सेवनसें आत्मा निर्मल होता है; तथापि कुत्ते, काग और सूकर के जैसे क्रुर स्वभाववाले दुर्जन हिंसादि कुकर्ममें ही मशगुल् हो रहते हैं. और हंस के जैसे शुद्ध स्वभाव संपन्न सज्जन तो हिंसादि कुकर्मोंका त्याग कर विवेक पूर्वक शुद्ध दया, सत्य, संतोषादि संवरका ही सेवन करनेमें आनंद मानकर उन्हीं के ही अभिमुख रहते हैं. दुर्जन दूसरे जीवोंको पापाचरणसें महान् त्रास पैदा करकें अंतमें उनके कटु फलके भागी होते हैं. उनकों नरकादिकी घोर वेदनायें सहन करनी पडती है. यावत् स्वच्छंदतासें चल कर किये हुवे कुकर्म योगसें दुःख दावानलसें परिपक्व होनेवाले वो पामरोंका कोइ भी बचाव नहीं कर सकता है. अनाथ–अशरण विचारोंओंकों वो सभी सहन करना ही पडता है. स्वाधीनतासें करकें ऐसे कुकर्म न किये होते तो पराधीनतासें इतना क्यों सहन करना पडता? इतना ही नहीं, मगर शुभमति योगसें दया, सत्य, संतोषादि संवरकों आदरकर आत्माकों निर्मलकर परम सुख प्राप्त करता! परन्तु विष के बीजसें अमृतफलकी आशा क्यों करकें रक्खी जावे? निष्ठुर दिलसें ऐसे कुकर्म करनेवालोंकों अनेक वेर नरकादि के घोर दुःख भुगतने ही पडते हैं. ऐसा समझकर सर्वज्ञ परमात्माकी पवित्र आज्ञानुसार दया, सत्य, संतोषादि सद्गुण धारन करनेमें विवेकीजन प्रयत्नशील रहते हैं. और उन्होंको अपने प्राणकी तरह प्रिय गिनकर सर्वथा कुकर्मोंका त्याग करते हैं. ऐसे क्रमशः विवेक-

से जिनाज्ञानुसार चलनेवाले सज्जनोंको तीन जगत्में किसीका भी डर नहीं है, कोइ भी उन्होंका वाल भी वांका करनेमें समर्थ नहीं है. विवेकसें प्राणी मात्रको अभयदान देनेवालोंको कुल जगह अभय मिलाता है, यह बात निर्विवादसें ही सिद्ध है. मरने के समान दूसरा कोइ दुःख या भय है ही नहीं. अपनको जो जो अनिष्ट है वो वो दुःख या भय दूसरोंको देनेके समान कोइ भी पाप नहीं है. सब जीवोंको अपने जान के समान गिनकर, किसीका भी अनिष्ट न करते जो उन्होंकी साथ परम मैत्री भाव धारन करते हैं उन्हीका ही जीवा सफल है, दूसरोंका नहीं! ऐसा समझ शासनपतवाले सज्जनोंको मैत्री भावका फैलाव कर स्व परको शांति-समाधि पैदा करनेकी दरकार रखनी दुरस्त है; क्यों कि वोही समस्त सुखका साधन है.

क्रोध-गुस्सा, मान-मगरूरी, माया-दगा-कपट, और लोभ-लालच इन कषायोंका पूरापूरा रुप सोचकर इन चांडाल चतुष्कका सर्वथा त्याग करने के वास्ते सज्जन तत्पर होते हैं. क्रोधाग्नि, क्षण भरमें की हुइ सुकृत करनीको जला देता है. मानरुप पर्वतपर चढे हुवे प्राणी नीचे ही गिरते हैं-लघुता पाते हैं. माया शल्यता-दगाखोरी प्राणीको अनेक जन्म तक हैरान करती है. और लोभ पिशाच प्राणीको प्राणांत कष्टमें डालता है. ऐसा समझकर शुद्ध विवेकी जन समता जलसें क्रोधाग्निको बुझानेके वास्ते, मृदुत्वरुप वज्रसे मान पहाडका चुरा करनेके वास्ते, सरलता

रुप सद् औषधासें माया शल्यकों निर्मुल करनेके वास्ते, और संतोष मंत्रसें लोभ पिशाचकों तावेदार बनानेके वास्ते शक्तिमान् होते हैं, यह बात अनुभव सिद्ध है. चारों प्रकारके कषाय प्राणी मात्रकों चार गतिरुप संसारमें अनेक दफै भ्रमण करवाते हैं; वास्ते सद्विवेकी सज्जनोंकों अवश्य उन्होंका परित्याग करनेकी ही जरुरत है.

पांचों इंद्रियें और मन दरेक तोफानी घोडेकी बराबर है, तो भी श्रीजिनेश्वरजीके वचनरुप लुगामसें विवेकीजन उन्होंकों तावे कर सकते है. जो अज्ञ, अविवेकी लोग मन और इंद्रियोंके चाकर नफर वनकर चलते है उन्हीके बुरे हाल हवाल होते हैं. हरएक इंद्रियजन्य कामना—इच्छाके तावे रहनेसें पतंग, भौंरा, मच्छी, हाथी और हिरनकी तरह बुरे हालकों भेटता है. तब जो पांचोंकी लालच—लोलुपता रुप फंदेमें फँस गये हैं वे प्राणियोंके कैसे बुरे हाल होवे उसका कहनाही क्या? दुर्जनसें भी वो ज्यादे छोडने लायक हैं; क्यों कि दुर्जन एक जन्म ही दुःख देता है, और ये तो जन्म जन्म दुःख देनेवाली होती हैं. मन तो मदमस्त हाथीकी तरह निरंकुश होकर गुणवंतकों दुःख फंदेमें फँसा देता है. वास्ते श्रीजिनेश्वर प्रभुके हुकमरुप अंकुशसें करकें उनकों तावे कर लेनाही दुरस्त है—इंद्रिय जन्य स्थूल क्षणिक विषयोंमें स्वच्छंद होकर भटकनेवाले मनकों कब्जकर इंद्रियोंकों भी कब्ज कर लेवै. इंद्रिय जन्य सुखमें आशक्त जनोंका मन ही वक्र होनेसें

दान–अभयदान–सुपात्रदान–अनुकंपादिदान अच्छे विवेकसें जो देते–दिया करते है, और पात्र परीक्षा पूर्वक जो सम्यग् ज्ञानादिका दान देते हैं, वे शुभ आशय वाले सज्जन चपल लक्ष्मीका सदुपयोग कर परमार्थ साधते हैं. और लक्ष्मीकी बाहुल्यता होने पर भी जो लोग सर्वज्ञ देशित सप्तक्षेत्रोंमें या खास करके दुःख ग्रस्त क्षेत्रमें कृपण वृत्तिसें नहीं बोते हैं यानि नहीं खर्चते हैं वे इस जहाँमें जनसमूह समक्ष अपवादका पात्र होकर मर गये बाद मूर्छासें बुरी गति पाते है.

शील–सदाचारसेंही प्राणी तत्त्वसें शोभा पाता है, शील येही मनुष्योंका सच्चा शृंगार है; शील–सुगंधसें सुगंधित हुवेले कमल तर्फ सुगंधी लेनेके वास्ते विवेकी भौंरे जाते हैं और शील सुगंधी रहित खुबसूरतवंत मनुष्य आवलके निर्गंध पुष्प जैसे निकम्मे हैं. फांकडे होकर फिरते रहते भी अपमान पाते हैं, और सुशील सज्जन राज सभामें भी सन्मान पाते हैं, देव भी उनकों सहायता देते हैं, उनकोंही जंगलमें मंगल होता है. ऐसा अचिंत्य महीमा शील गुणका ध्यानमें लेकर सुज्ञजनोंकों वो गुण अवश्य ग्रहण करनेकेही लायक है.

तप–बाह्य और आभ्यंतर भेद करकें दो प्रकारका है. जो कर्म मलकों तपाकर जल जलाकर खाक करदेवै, यावत् आत्माकों निर्मल कर सकता है उसीका नाम तप है. सम्यग् ज्ञानसें स्वस्वरुप ध्यानमें ले हंसकी तरह विवेकसें सद्वर्त्तन सेवन कर अनादि कर्म-

रता दूर नहीं होती है. और कोमलता, आर्द्रता, सरलता, तथा समतादि सद्गुण श्रेणि प्रकट नहीं होती है. अंतमें जहां तक नीच, अन्यायी, पापी, निर्दयकी तर्फ उपेक्षा बुद्धि–राग द्वेष रहित मध्यस्थता नहीं आवे, वहां तक निष्पक्षपात सर्वज्ञ शासनके रहस्यभूत सापेक्ष–दया धर्मका सेवन नहि होवै. ऊपर कही गइ चारों भावना ये परम पवित्र सर्वज्ञ शासनकी गहेरी नीव है, उसीसें पावन भावना विगरका धर्म केवल आडंबर या दंभ–कपट रुपही है. ऐसी उत्तम भावनायें सहित की हुइ या करनेमें आती हुइ धर्म करणी दूध मीसरीके मिलाप समान बहुत मुजेहदार स्वाद देती है, उसीके शिवायकी कुल धर्म करणी फीकी–रुखी लगती है. वैसी उत्तम भावनावंत भव्य कदाचित् किसी सबबसें क्रियानुष्ठान करनेमें अशक्त होवे तो भी चित्तकी अतिसय शुद्धि–प्रसन्नतासें वडा भारी फायदा पैदा कर सकता है. और उक्त सद्भावना रहित प्राणी क्रियाका गर्व करकें दुःखी भी होता है. वैराग्य ये ऐसी तो अपूर्व और चित्ताकर्षक चीज है के चक्रवर्ती जैसे भी ६ खंडकी ऋद्धि मोजूद होने परभी उसकों छोडकर योग–दीक्षा ले उनका शरण ग्रहण करते हैं. दुनियांकी सभी चीजोंमें भय रहा ही है; लेकिन वैराग्यमें भय नहीं है–वो अभय है. उसी वास्ते सच्चे सुखके अर्थिजन उन्हींकाही आश्रय लेनेका स्वीकारते हैं. विषयासक्त जीव जब पवनकी लहरीयें लेनेकों जाता है, तब विवेकी मुमुक्षुजन सभी दुःखोंकों दलन करनेवाले वैराग्य लहरीओंकाही सेवन करता है–इतनाही नहीं; मगर

अपना वर्ण—रंगत बदलकर फीकी रंगतका नहीं होता है, तैसेंही सज्जन चाहे वैसे कष्टमें भी आपका भव्य स्वभाव छोडकर दुर्जनता नहीं स्वीकारता है. प्राणांत तकभी जो अपनी प्रकृतिकों विकृत नहीं होने देते हैं, वैसे सज्जनही सर्वज्ञ धर्म सेवनके लायक हैं. और वोही सज्जनोंकी करोंडों दफै वलैयें लेनी मुनासीब है. मलीन वृत्तिवाले दुर्जन सर्वज्ञ कथित धर्म सेवनको नालायकही हैं. अच्छे आशयवाले सज्जन स्वपरका उपकार करकें, सर्वज्ञ धर्मका आराधन करकें अंतमें अनंत अक्षय मोक्ष सुखकों स्वाधीन करते हैं. इस प्रकार संक्षेपसें सद्गुरु कृपा योग द्वारा कथन किया गया अपना कर्त्तव्य विचार कर विवेक अंगीकार करकें छोडने लायककों छोडनेकों और आदरने लायककों आदरनेकों आत्मार्थीजन ज्यादा लक्ष देवेंगे. करने लायक धर्म करणी श्री सर्वज्ञ कथित शास्त्रानुसारसें यथाविधि करकें भी अगर्व सह रहेवेंगे; तथापि यथाशक्ति अपने साधर्मी-भाइयों और भगिनीयोंके उचित कार्योंमें उचित मदद देकर उन्होंकों ज्यादे तोरपर धर्ममें योजनेका प्रबंध कर देवेंगे—यावत् गुणी जैनोंमेंसें गुण ग्रहण करकें गुणकी महत्ता बढावेंगे, और निर्गुणी पर भी अनुकंपा ला कर उनकों गुणशाली बनानेके वास्ते बन सकै उतना उद्यम करेंगे, जगत्के तमाम जीवोंकों अपने मित्र तुल्य गिनेंगे, किसीके साथ कबी भी दुश्मनाइ, विरोध न रखेंगे, और नीच, निर्दय, पापी प्राणियोंकी तर्फ भी द्वेष न लाते विवेकसें उनकी उपेक्षा करेंगे, यावत् उत्तम भावनामय अंतःकरण बनाकर सावधानतासें

प्रणीत उत्तम जाति और न्यायके नियम पालनेके वास्ते, और समस्त अलक्ष्मीके कारणभूत अनीति, अन्यायके बुरे सडेको दूर करनेके वास्ते अपन कब शक्तिमान् सत्त्ववंत होयेंगे ? अपने परम पवित्र सर्वज्ञ परमात्मा तर्फकी अपनी पवित्र फर्जको यथार्थ समझकर अदा करनेके वास्ते कब यत्नशील होयेंगे ? अपने निःस्वार्थी मित्र, बंधु, या माता पिताके समान श्री सद्गुरुका पवित्र हुकम मुजब चलनेमें अपन कब भाग्यवान् हो सकेंगे ? श्री सर्वज्ञ भाषित निष्पक्षपात धर्मको भी सुवर्णकी तरह या रत्नकी तरह पूर्ण परीक्षा करके निःसंदेहतासे स्वीकार कर उनमें निश्चलता धारण कर सहज समाधि लाभ संप्राप्त करिके कब कृतार्थ होयेंगे ? श्री तीर्थंकर देव मान्य श्री संघ-तीर्थकी तमाम आशातना दूर करके उनकी यथाविधि सेवा कर स्वजन्म सफल करनेका दिन कब आयगा ? श्री सर्वज्ञ आगमों की भी कुल आशातनायें दूर कर उनकी फरमाइ हुइ आज्ञाओंको अमृत की तरह आनंदसें अंगिकार करकें उसी मुजब अमलमें लेनेके वास्ते कब दृढ प्रतिज्ञ होयेंगें ? प्यारे भ्राता गण ! जब अपन असी उत्तम सामग्रीका पुर्व पुण्यके योगसें संयोग प्राप्त कर श्री सर्वज्ञ प्रभुकी पवित्र आज्ञाको हुरुफ वहुरुफ आराधनेमें अत्यंत रुचिवंत और श्रद्धावंत हो कर्त्तव्य परायण होयेंगे तभी सभी दुःख दौर्भाग्यको दूरकर-चकचूर कर अपने संपुर्ण सुखी होयेंगे ! तथास्तु ! परंतु जब तक जगहितकारीणी श्री जिनाज्ञा का अनादर कर स्वच्छंदतासें अनेक पापारंभ करके-अपन छल

ऐसाही अपनको हमेशां शुद्ध अंतःकरणसें इच्छना चाहिये कि जिस तरह आनंदघनजीने कहा हैः—

" मुग्ध सुगम करी सेवन आदरेरे, सेवन अगम अनूप;
" देजो कदाचित् सेवक याचनारे, आनंदघन पद रुप. संभव."

ज्ञानी पुरुषोंने पांच प्रकारकी क्रियाऐं कही हैं—यानि विष १, गरल २, अननुष्ठान ३, तद्हेतु ४, और अमृत क्रिया ५, ये पांच है. उनमें विष, गरल और अननुष्ठान ये तीनों क्रिया संसार फल, और तद्हेतु तथा अमृत क्रिया मोक्ष फलकों देती है. ऐहिक, पारलौकिक सुखके वास्ते और केवल गतानुगतिक पणेसें तत्त्व समझे विगरही करनेमें आती हुइ विषादिक क्रिया तुच्छ फल दे कर अंतमें दुखसें मुक्त नही कर सकती है. और पूरा पूरा तत्त्व समझकर सहेतुक मोक्ष—जन्म मरणका चक्कर दूर करनेके लिये सावधानीके साथ करनेमें आती तद्हेतुक क्रिया तथा क्रमशः त्रिकरण शुद्धिसें एकाग्रतासह करवानेमें या करनेमें आती हुइ अमृत क्रिया तुरंत मोक्षफल देती है. वास्ते मोक्ष सुखके अभिलाषि सज्जनोंकों विषादिक क्रियाऐं तज अमृत क्रिया तथा तद्हेतु क्रियाकाही आदर करना मुनासीब है. श्री सर्वज्ञ भाषित समस्त सत्क्रिया सहेतुक होनेसें उन हरेकका कुल्ल हेतु गुरु द्वारा जानकर उनमें बहुत आदर करना वही लायक है; क्यौं कि जिस्सें समस्त दुःखोंकों अंतमें तिलांजली दे अपना अंतरात्मा कर्पूर समान उज्वल यशका स्वामी हो परमात्म पदका अधिकारी होवै और समस्त बाधक कर्म बंधनकों छेद कर अनंत चतुष्टय—अनंत ज्ञान, अनंत

सार बोल—संग्रह.



१ लोभी मनुष्य फक्त लक्ष्मी इकट्ठी करनेमें ही तत्पर—हुंसियार रहते हैं, मूढ—कामी मनुष्य काम भोग सेवनमें ही तत्पर रहते हैं, तत्त्वज्ञानीजन काम क्रोधादि दोषका पराजय करके क्षमादि गुण धारण करनेमेंही तत्पर रहते हैं, और सामान्य मनुष्य तो धर्म, अर्थ, और काम यह तीनूका सेवन करनेमें ही तत्पर रहते हैं.

२ पंडित उन्हीकोंही समझो कि, जो विरोधसें विरामकर शांत, समभाववंत हुवे होवें; साधु उन्हीकोंही जानो कि, जो समय और शास्त्रानुसार चलें; शक्तिवंत उन्हीकोंही समझो कि, जो प्राणांत तक भी धर्मका त्याग न करें; और मित्र उन्हीकोंही जानो कि, जो विपत्तिमें भागीदार होवें.

३ क्रोधी मनुष्य कभी सुख नहीं पाते हैं, अभिमानी शोकाधीन होनेसें कभी जय नहीं पाते हैं, कपटी सदा औरका दासपणाही पाते हैं, और महान् लोभी और मम्मण जैसे मनहूस मख्खीचूस नरकगति ही पाते हैं.

४ क्रोधके जैसा दूसरा कोइ भवोभव नाश करनेहारा विष नहीं है; अहिंसा—जीवदयाके जैसा दूसरा जन्मजन्ममें सुख देनेवाला कोइ अमृत नहीं है; अभिमानके जैसा कोइ दूसरा दुष्ट शत्रु नहीं है; उद्यमके जैसा कोइ दूसरा हितकारी बंधु नहीं है; माया—